



# हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान व काव्यभाषा का स्वरूप

राजराजेश्वरी एच.जी., डॉ. मीनेश जैन

शोधकर्ता, सनराइज यूनिवर्सिटी, अलवर

एसोसिएट प्रोफेसर, सनराइज यूनिवर्सिटी, अलवर

**अमूर्त:** यह विषय हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण हिस्से को प्रकट करने का एक प्रयास है, जिसमें उपनिषदों से आगत कवि कबीर के साहित्य में उनके स्थान और उनकी काव्यभाषा का स्वरूप विश्लेषित होता है। कबीर के दोहों और पदों में उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं को एक अद्वितीय दृष्टिकोण से दर्शाया। उनकी रचनाओं में उन्होंने संसार के विविधता, विरोधिता और समानता की चर्चा की। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार मानवता की सामाजिक, धार्मिक और नैतिक मुद्दों को छूने वाले हैं। कबीर की काव्यभाषा अत्यंत सामान्य और सारल थी, जिसमें वे जातिभेद, धर्मभेद और भाषाभेद के खिलाफ थे। उनकी भाषा जनमानस के दिल तक पहुंचने की क्षमता रखती थी, जिसके कारण उनकी रचनाएँ समय के साथ भी अपनी महत्वपूर्णता बरती हैं। इस अध्ययन में, हम कबीर के साहित्य में उनके स्थान की विशेषता को और उनकी काव्यभाषा की विशेषता को प्रमुखता से प्रकट करने का प्रयास करते हैं। उनके दोहों के माध्यम से, हम उनके दृष्टिकोण को जानने का प्रयास करते हैं जो समाज के सभी वर्गों तक पहुंचता है और साहित्य के माध्यम से समाज की समस्याओं के समाधान की ओर प्रेरित करता है।

## I. परिचय

भाषा, अर्जित एवं संस्कारित होती है। इस अर्जन एवं संस्कार का वाहक परम्परा होती है। इसलिए किसी भाषा के अध्ययन से पूर्व उसकी पूर्ववर्ती भाषा का अध्ययन करना समीचीन हो जाता है। अतएव कबीर की काव्यभाषा के विवेचन के पूर्व हमें कबीर पूर्व काव्य भाषा के स्वरूप को जानना आवश्यक होगा। कबीर का समय भक्तिकाल का है। भक्तिकाल के पूर्व हिन्दी साहित्य में आदिकाल आता है। आदिकाल वस्तुतः एक प्रवृत्ति का नाम न होकर विभिन्न प्रवृत्तियों का एक संकलन है, जिसमें जहाँ एक ओर विषय वस्तु की दृष्टि से भी विभिन्नताएँ हैं, जैसे वीरकाव्य, श्रृंगारकाव्य, आध्यात्मिक काव्य आदि एवं भाषा की दृष्टि से भी प्राकृत, अपभ्रंश एवं अवहट्ट का वैविध्य मिलता है। फिर भी मुख्य रूप से आदिकाल की प्रतिनिधि भाषा अपभ्रंश थी। संस्कृत, पाली प्राकृत जितनी एक दूसरे के नजदीक है अपभ्रंश उतनी नहीं है। पुरानी संस्कृत (छन्दस), या वैदिक भाषा 1500 ई०पू० से 600 ई०पू० थोड़ा बदलते हुए बोली जानी वाली भाषा है। संस्कृत के क्लिष्ट उच्चारण की आसान (बालभाषा) बनाकर पाली ने तद्भव शब्दों की रचना शुरू की। संस्कृत के भारी भ्रंश व्याकरणिक कलेवर को भी कम करने का कार्य भी पाली ने किया शुद्ध संस्कृत बोलने के लिए जहाँ 6000 से ज्यादा सूत्र-वर्तिकी को याद रखने की जरूरत है वहाँ पाली में यह काम मात्र 800-900 सूत्री से ही हो जाता है। "प्राकृत ने शायद व्याकरणों के नियमों की संख्या को और कम नहीं किया लेकिन तद्भव या उच्चारण के सरलीकरण के काम को उसने और जोर शोर से किया। "अपभ्रंश में आकर असाधारण परिवर्तन हो गया। पाली प्राकृत ने जहाँ संस्कृत के व्याकरणिक कलेवर में व्यापक परिवर्तन तो किए परन्तु वहीं भाषा के अन्तर्गत सुवन्त, तिङन्त या शब्द रूप और धातु रूप की शैली में दोनों ही ने संस्कृत का अनुसरण नहीं छोड़ा। परन्तु अपभ्रंश ने नए सुवन्तों और तिङन्तों की सृष्टि की और ऐसी सृष्टि की जिससे वह हिन्दी से अभिन्न हो गयी और संस्कृत, पाली, प्राकृत से अत्यन्त भिन्न..... " परन्तु हमें इसके साथ-साथ पढ़ने समझने में अपनी दिक्कत का ख्याल रखना ही होगा।

## II. सिद्धों की काव्यभाषा ।

सिद्धों की भाषा पर विचार करने पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सिद्ध कौन थे? इस प्रश्न पर हम गहनता / सूक्ष्मता पूर्वक विचार न कर केवल स्थूल रूप में यह जानने का प्रयास करेंगे कि सिद्ध कौन थे? गौतम बुद्ध के निर्वाण के 45 वर्ष बाद तक बौद्धधर्म का पर्याप्त प्रचार और प्रसार हुआ। बौद्धधर्म का उदय वैदिक कर्मकांड की जटिलता एवं हिंसा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्धधर्म विकृत होकर हीनयान तथा महायान नामक दो शाखाओं में विभक्त हो गया। आठवीं शताब्दी में एक ओर तो गुप्त नरेशों की हिंदू धर्मनिष्ठा द्वारा बौद्धधर्म के विस्तार को आघात पहुँचा, दसरी ओर कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य ने इसकी नींव ही हिला दी। तब भारत के एक विशालभूभाग से परित्यक्त होकर बौद्धधर्म को तिब्बत, नेपाल एवं बंगाल की शरण लेनी

पड़ी। शंकराचार्य के शैव से प्रभावित होकर और अपनी सारी दुर्बलताओं को जानकर इस धर्म ने तंत्र मंत्र एवं अभिचार के माध्यम से जनता को विमृग्ध करना प्रारंभ किया। इसने समाधि, तंत्र-मंत्र, डाकिनी शाकिनी, भैरवीचक्र और मद्यमैथुन में स्वयं को उलझाकर सदाचार को नष्ट कर दिया। भगवान बुद्ध की उपासना ईश्वर के रूप में होने लगी और तंत्र प्रत्यय ही इसकी मुख्य प्रवृत्ति बन गए। 'मैं ही बुद्ध हूँ' इस मंत्र की जप प्रणाली में एक नवीन संप्रदाय, मंत्रयान की स्थापना की। इस प्रकार महायान, मंत्रयान में परिवर्तित हो गया। आगे चलकर यह भी वज्रयान तथा सहजयान नामक दो शाखाओं में विभक्त हो गया। बाद में इसी स वाममार्ग निःसृत हुआ। 84 मंत्र द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की चेष्टा करने वाले योगी सिद्ध; कहलाने लगे। इन में 84 सिद्ध हुए हैं। इनका समय 797 से 1257वीं माना गया है। श्री पर्वत सिद्धों का प्रधान केन्द्र था। अभी तक 21 सिद्धों की ही रचनाएं उपलब्ध हैं। इन सिद्धकवियों के नाम के पीछे पा या पाद शब्द जुड़ा रहता है जो आदर सूचक माना जाता है। ये प्रायः अशिक्षित व निम्न जाति के होते थे। अतः इनकी उपासना में, कापाली, डोम्बी आदि निम्न वर्ग की नायिकाएं ही साधना के अवलंबन रूप में गृहीत होती थीं। इन सिद्धों में एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि धीरे-धीरे इनका झुकाव ईश्वरवाद की ओर हो रहा था। सिद्धों की रचनाएं अपभ्रंश में मिलती हैं। वैसे इसे संध्या भाषा की संज्ञा भी दी गयी है। गहन विश्लेषण के बाद यह निश्चित हो गया है कि सिद्ध कवियों की भाषा यद्यपि अपभ्रंश है जो कि अपने समय की परिनिष्ठित भाषा के रूप में मान्य थी तथापि यह अपने क्षेत्रीय प्रभाव से बच ना सकी है। इसकी लोकप्रियता देखकर लिपिकारों ने इसकी भाषा में समय पर सुधार करने की कोशिश की है। इसी कारण उनमें विभिन्न हस्तलेखों की भाषा में अंतर आता गया। इसलिए भाषा का वास्तविक रूप सुरक्षित न रह सका उसका आज जो रूप उपलब्ध है उसकी विशेषताएं हैं, इस प्रकार है-

सिद्धों ने संस्कृत के शब्दों के प्रयोग से हटकर अनेक देशी शब्दों का प्रयोग है जैसे सरहपा ने चग्गी (सुंदर), चेल्लू (चेला), धाध (धंधा) आदि शब्द का प्रयोग किया है। सिद्धों ने अपने सहज साधना को गुह्य बनाने के लिए प्रतीकात्मक भाषा का उपयोग किया है।

सिद्धों की भाषा, लोक भाषा है। राहुल जी सातवीं-आठवीं शताब्दी को भाषा का संधिकाल कहते हैं। उनके अनुसार प्रथम शताब्दी के आसपास प्राकृत भाषाओं का प्रयोग बढ़ा, जो सिद्ध कवियों के समय तक स्थानीय अपभ्रंश में बदलती हुयी आधुनिक भारतीय भाषाओं के लक्षण विकसित कर रही थी। "हिन्दी की तरह अपभ्रंश, संस्कृत, प्राकृत के विपरीत अश्लिष्ट भाषा है।

### III. गोरखनाथ एवं नाथों की काव्यभाषा।

कालक्रम की दृष्टि से हिंदी साहित्य के अन्तर्गत नाथ साहित्य, सिद्ध साहित्य का परिवर्ती है। इनका मूल उद्देश्य साहित्य सृजन न होकर मानवमात्र में प्रचार प्रसार करना था। इसी कारण इनकी भाषा शास्त्रीय भाषा से इतर लोक समपृक्त सरल भाषा थी। सिद्धों की भाषा अपभ्रंश की है। आचार्यशुक्ल ने भी अपने इतिहास ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है। आचार्यशुक्ल के अनुसार, "अपभ्रंश या प्राकृतभासा हिंदी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमागी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की पहली शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। भरतमुनि (विक्रम तीसरी शती) ने अपभ्रंश नाम न देकर लोकभाषा को देश भाषा ही कहा है। वररूचि के "प्राकृत-प्रकाश" में भी अपभ्रंश का उल्लेख नहीं है। अपभ्रंश नाम पहले पहल वलमी धारसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन (वि०स० 650 के पहले) को संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश तीनों का कवि कहा है। वाण ने हर्ष चरित' में भी संस्कृत कवियों के साथ भाषा कवियों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार अपभ्रंश या प्रकृताभासा हिंदी में रचना होने का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी में मिलता है। उस काल की रचनाओं के नमूनों बौद्धों की वज्रयान शाखा के सिद्धों की कवियों के बीच मिले हैं। "इसी कारण वज्रयानी सिद्ध अतिशीघ्र लोकप्रिय हुये। गोरखनाथ और नाथ सिद्धों की रचनाओं के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इनकी रचनाएं अपभ्रंश के प्रारम्भिक काल की नहीं हैं। जबकि सिद्धों की रचनाएं अपभ्रंश के प्रारम्भिक काल की हैं। नाथों का रचनाकाल 10वीं से 14वीं शताब्दी तक का है। इस काल के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 10वीं से 14वीं शताब्दी के काल का साहित्य अपभ्रंश प्रधान साहित्य है। इस प्रकार नाथों की भाषा अपभ्रंश के अंतिम काल की तथा कुछ उसके बाद की भी लगती हैं। नाथ साहित्य के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपना मत दिया है कि 10वीं शताब्दी तक का प्राप्त जैन, बौद्ध साहित्य तो बहुत कुछ विश्वसनीय है, परन्तु नाथ साहित्य के संबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, उसका कितना अंश कितना पुराना है गोरखनाथ के नाम पर चलने वाली रचनाएं तो और नयी जान पड़ती हैं। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन के अनुसार "गोरखबानी की रचना 9वीं सदी की नहीं, 15-16 वीं की है।" महापंडित की उक्ति ठीक ही प्रतीत होती है जो कि गोरखबानी के निम्न पद से स्पष्ट है :-

### IV. बोल्या गोरखनाथ मछिंद्र का पूता।

छाड़ि कै माया भया अवधूता। छाड़ि कै माया भया अवधूता।  
गुरदेव स्वंभ देव सरीर भीतरिये। गुरदेव स्वंभ देव सरीर भीतरिये ।  
आत्माउत्तिम देव वाही की न जोगौ सेव। आत्माउत्तिम देव वाही की न जोगौ सेव।  
आन देव पूजि पूजि इमहीं भरिये। आन देव पूजि पूजि इमहीं भरिये।

नके दारे नावे नाव, त्वेणी जगन्नाथे दसवे द्वारि केदार नके दारे नावे नाव, त्वेणी जगन्नाथे दसवे द्वारि केदारं ।।  
वस्तुतः बौद्ध सिद्धो और नाथो की भाषा में अंतर दिखायी देता है। इसका कारण है कि बौद्ध सिद्ध पूर्वी बिहार और नाथ सिद्ध पश्चिमोत्तर तथा राजस्थान और सिंध में रमन वाले थे। इसके साथ काल का भी अंतर है। उस समय में अरबी फारसी के प्रयोग विशेष है, क्योंकि आक्रमणकारी पश्चिमोत्तर प्रांत से ही आए, बिहार तो बाद में प्रभावित हुआ। इनकी भाषा की निश्चित तिथि तो नहीं दी जा सकती, परन्तु युग अवश्य ही निर्देशित किया जा सकता है। इस अंतर की और अधिक सुस्पष्ट करते हुए पं० बलदेव उपाध्याय का मत है कि "नाथ सिद्धो की काव्यभाषा, उस युग की भाषा है जब प्रांतीय बोलियों में प्राचीन सार्वभौम मागध अपभ्रंश से पृथक

होकर अपने सकीर्ण रूप को प्राप्त नहीं किया था। फिर भी उनकी भाषा में अधिकांश शब्दरूप उन काव्यों हिन्दी के पास पहुँचाते हैं। सिद्धो का गढ़ था बिहार प्रांत-मगध प्रदेश, जहाँ की बोली में उन्होंने अपने हृदय के आध्यात्मिक उद्गारों को प्रकट किया। इसीलिए सिद्धो के काव्यों में हम हिन्दी काव्य की प्राचीनतम झलक पाते हैं। कुछ भी हो, चाहे रचनाओं के कालक्रम निर्धारण में जितने भी समस्या हो परन्तु, एक बात तो स्पष्ट है कि सिद्ध और नाथ योगियों की भाषा क्रमशः अपभ्रंश और देशीभाषा ही कही जायेगी। जो कि चौरंगीनाथ जी के सबदी से पूर्णतया स्पष्ट है:-

भूल सीचौ रे अवधू भूल सीचौ। भूल सीचौ रे अवधू भूल सीचौ।  
ज्यू तरबर मेल्लहत मालं ।। ज्यू तरबर मेल्लहत मालं ।।  
अम्डै चौरंगी मूल सीचिया। अम्डै चौरंगी मूल सीचिया।  
यौ अनमै उतरया पारं ।। 1 ।। यौ अनमै उतरया पारं ।। 1 ।।  
मारिबा तौ मन मस्त मारिबा। मारिबा तौ मन मस्त मारिबा।  
लूटिवा तै मन मस्त मारिबा। लूटिवा तै मन मस्त मारिबा।  
लूटिबा तौ मन मस्त लूटिवा ।। लूटिबा तौ मन मस्त लूटिवा ।।  
साधिवा तौ थिरतत साधिवा। साधिवा तौ थिरतत साधिवा ।

सेइवा निरंजन निराकार ।। 2 ।।

गोरखनाथ चाहे जब तक रहे हो या अमर काया से अब भी हो, परन्तु उनकी हिन्दी 14वीं शताब्दी से पूर्व की नहीं प्रतीत होती है। हां इसके भीतर प्राप्त प्राचीन प्रयोग एक शंका अवश्य उत्पन्न करते हैं कि इनकी रचना पुरानी रही होगी-जिसको उनके शिल्पी ने कालान्तर में बदले हुए भाषा म लिपिबद्ध किया होगा। स्पष्टतः गोरखनाथ की रचनाओं में अपभ्रंश और मध्यकालीन हिन्दी के स्वरूप स्पष्ट दिखायी देते हैं। यही स्थिति अन्य नाम सिद्धों की रचनाओं की है। अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है और आज की हिन्दी कहाँ प्रारम्भ होती है दोनों के मध्य सीधी लकीर खींचना संभव नहीं है। सिद्धो और नाथो की भाषा एक नहीं है कि उसको कोई एक नाम दे दिया जाय। योगियों की भाषा भी यौगिक ही है। आज की हिन्दी के प्रचार प्रसार तथा उसकी सम्पन्नता में इन मनचारी योगियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। आचार्यशुक्ल ने नाथ पंथियों की भाषा के संदर्भ में लिखा है कि, "नाथ पंथ के इन योगियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से जिसका

## V. बसती न सून्यं

सून्यं न बसती सून्यं न बसती

अगम अगोचर ऐसा अगम अगोचर ऐसा

गगन सिषर महिं बालक बोलै गगन सिषर महिं बालक बोलै गगन सिषर महिं बालक बोलै  
ताका नाँव धरहुगे कैसा।

साधना मार्ग की कुछ अपनी गोपनीयता भी होती है। उलटबाँसी, जिसको संध्याभाषा भी कहा गया है। इससे तात्पर्य है-वह भाषा जो गोधूली की तरह प्रकाश और अंधकार का मिश्रण हो। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि, "इसका अर्थ अभिसंधि या अभिप्राय युक्त वाणी है।" 34 पं० परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि, "बौद्ध सिद्धो एवं नाथो की रचनाओं को अच्छे काव्य के उदाहरणों में रखना चाहिए। इसके साथ ही हिन्दी काव्य धारा के स्रोत के रूप में यह बहुत क्षीण ही है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नाथ सम्प्रदाय की कृतियाँ प्रायः संध्याभाषा में ही लिखी गयी है। संध्याभाषा का अर्थ यह भी है कि कितना प्रकाश और कितना अंधकार, कुछ कहा न जा सकता है। गोरखवानी में संग्रहीत, गुरूगोरखनाथ के पदों में से लगभग 2 1 दर्जन ऐसे हैं जिनमें संध्या भाषा शैली के अनुसार निर्मित उलटवाँसियाँ स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है।

संदेशरासक / अब्दुल रहमान की काव्यभाषा।

संदेश रासक, आदिकाल के हिन्दी साहित्य की अब्दुल रहमान कृत रचना है। संदेश रासक की भाषा के विषय में विद्वान एकमत है कि 98 वह परिवर्ती अपभ्रंश की रचना है। 36 हिन्दी साहित्य का आदिकाल नामक ग्रंथ में आचार्य द्विवेदी ने स्वीकारा है कि संदेश

रासक की भाषा, "भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह अधिक अग्रसर हुयी भाषा है संदेश रासक इसी प्रकार के अपभ्रंश में 12-13 की शताब्दी में रचित हुआ था। काव्यान शासन ग्रंथ में हेमचन्द्र ने परिनिष्ठित अपभ्रंश से भिन्न ग्राम्य' अपभ्रंश का अस्तित्व स्वीकार किया है। यह 'ग्राम्य' अपभ्रंश शिष्ट अपभ्रंश की अपेक्षा जन जीवन की बोली के अधिक निकट थी। हेमचंद्र के बाद अपभ्रंश काव्य की जो धारा बहती रही उसमें इस ग्राम्य तत्व का अधिकाधिक समावेश तो हो ही गया था। साथ ही इसमें हेमचन्द्र द्वारा स्वीकृत व्याकरण द्वारा निबद्ध नियमों के पालन में भी शिथिलता बढ़ ती गयी। इस विकसित या परिवर्ती अपभ्रंश की परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ स्पष्ट विभिन्नताएं भी है। इसी आधार पर लोगों ने इसे अपभ्रंश से अलग अवहट्ट नाम देना चाहा है। 'संदेश रासक के कवि ने भी अपनी रचना को लोक-के अधिक निकट रखने की ओर यथेष्ट ध्यान दिया है।

## VI. निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में कबीर का स्थान व काव्यभाषा का स्वरूप विषय पर यह निष्कर्ष किसी भी प्रतिष्ठित विद्वान के अनुभवों और अनुसंधानों का परिणाम है, जिससे हमें एक महान कवि कबीर के साहित्य के महत्वपूर्ण स्थान और उनकी अद्वितीय काव्यभाषा का स्वरूप समझने का अवसर मिलता है। कबीर के साहित्य में वे अपनी अद्वितीय धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके पद और दोहे समाज की विविधता, धार्मिक विरोधिता और मानवता के मूल्यों की उपलब्धि कराते हैं। उनकी भाषा सरल और सामान्य थी, लेकिन उन्होंने उसमें गहराई और तात्पर्य छिपाए रखे थे। उनकी काव्यभाषा के विशेषता में विश्वास, धर्म, और भक्ति के तत्व सहित आदर्शों का संघटन था। वे सामान्य शब्दों का उपयोग करके भगवत की महत्वपूर्णता, मानवता के सामान्य मूल्यों के प्रति समर्पण, और समाज की विरासत के प्रति आवश्यकता को अभिव्यक्त करते थे। इस अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि कबीर के साहित्य में उनका विशेष स्थान है जो न केवल भक्ति और धार्मिकता के प्रतीक है, बल्कि मानवता की उन्नति और सामाजिक सुधार के लिए एक प्रेरणास्रोत भी है। उनकी काव्यभाषा से हमें संवादपूर्णता, आदर्शों का संघटन, और मानवता के साथ सहयोग की महत्वपूर्णता का आभास होता है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कबीर की विचारधारा, डॉ गोविन्द त्रिगुणायत, पृ- 318
2. शोध प्रबंध - संत औश्र सूफी साहित्य मे नैतिक तत्व श्रीमती सविता श्रीवास्तव ।
3. कबीर का सामाजिक दर्शन -पृष्ठ-117 डॉ. प्रहलाद भौर्य
4. कबीर श्रृशावली पृष्ठ 104
5. युग दृष्टा कवि कबीर, पृ. 40] अवधेश प्रसार सिंह केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा ।
6. सदगुरु कबीर साने प्योनिधि पृ. 188 - आचार्य गृधमुनि नाम साहब ।
7. कबीर और कबीर पंथ, पृ. 153 डॉ केदार नाथ द्विवेदी ।
8. कबीर पंथ का उद्भव एवं प्रसार पृ. 62- डॉ राजेन्द्र प्रसाद।



# International Journal of Advanced Research in Education and Technology (IJARETY)